UNIVERSAL LIBRARY
OU_182449
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.6/V46K Accession No. H2504

Author वेंकटराव, आर.

Title काव्य मीमांसा / 1952

This book should be returned on or before the date last marked below.

काव्य कौमुदी

पहला भाग

★

(आर. वेंकटराव)

हिंदुस्तानी हिंदी सभा
मुकर्रमजाही रोड,
हैदराबाद, दक्षिण.

पहली बार 1-12-0

मुद्रक
ज य हिं द प्रिं टिं ग प्रे स,
१४५२/५, नारायणगुडा, हैद्राबाद-द.

एक बात

हिंदुस्तानी हिंदी सभा की ओरसे मीठे बोल, भारत की आवाज के नामों से कविता की दो पुस्तकें छापने के बाद सभाके सामने यह बात पहलेसे ही थी कि कविता की एक ऐसी पुस्तक छाप दी जाय जिस में हिंदी के सभी गण्य मान्य कवियों की ऐसी कवितायें रहें, जिन के विचार उंचे और भाषा सरल हो, और अगर होसके तो कुछ ऐसे कवियों की जीविनियां भी थोडी सी दीजयें जिनमें पाठकों को उन की जीविनियों से स्फूर्ति मिले. अधिक कवियों की जीविनियां तो हमने नहीं दीं, पर जिनकी दीं उनकी शैली हमारी निराली है, और पीछे की जीविनियों से भिन्न है. जिन कविताओं को हमने चुना है, हमारा विचार है कि उन में भाषा ज्ञानके साथ विचारों के निखरने में काफी सहायता मिलेगी.

हमारा नपादंड चेष्टा है, न कि सफलता. विद्वान पाठक इसी दृष्टी से इसे देखें.

1-12-1952 आर. वेंकटराव,

क्या और कहां ?

1	कबीर	... ...	5
2	कबीर के कुछ दोहे	... ...	7
3	गोस्वामी तुलसी दास	... ...	17
4	परशुराम-लक्ष्मण संवाद	... ...	19
5	राम–सीता संवाद	... ...	33
6	रहीम	... ...	40
7	रहीम के दोहे	... ...	42
8	हरि औध	... ...	51
9	कवि	... ...	52
10	होली	... ...	54
11	दुखिया के आंसू	... ...	55
12	मैथिली शरण गुप्त	... ...	58
13	मातृ मंदिर	... ...	59
14	स्वय मागत	... ...	62
15	रचना	... ...	64
16	आय का उपयोग	... ...	67
17	दशहरा	... ...	70
18	चिंता	... ...	73
19	कर्म	... ...	75
20	दर्शन	... ...	78
21	भिक्षुक	... ...	80
22	कामना	... ...	81
23	जीवन का अधिकारी	... ...	82
24	सब मानव हैं समान	... ...	83
25	उद्‌बोधन	... ...	85
26	बालिका परिचय	... ...	87
27	ठुकरा दो या प्यार करो	... ...	88
28	क्रांति कारी	... ...	86

कबीर

इन का पूरा नाम कबीरदास है – पहला हिस्सा मुसलमानी है और दूसरा हिंदुआनी. नाम के अनुसार ही इन का जन्म मुसलमान घराने का है, पर बाद में इन पर प्रभाव हिंदू दर्शनोंका पडा है. यह जानने की चेष्टा करने की अपेक्षा कि कबीर पर किस किस का प्रभाव पड़ा है, यह देखना ज्यादा अच्छा है कि खुद कबीर का समाज पर कैसा असर पड़ा .

कहते हैं कि जब कबीर का देहांत हुआ तब हिंदुओं और मुसलमानों में तकरार हुई . मुसलमानों ने कहा कि हम इन की कबर बनायेंगे और हिंदुओं ने कहा कि हम उन की समाधि बनायेंगे . कबीर की लाश के लिए लड़ने वाले मुसलमानों ने, कहना चाहिए, बादमें कबीर की कोई खबर नहीं ली; न उसकी याद को ताज़ा बनाये रखा, न उसकी सीख पर ध्यान दिया और न उनके गीतों और बोलों को उर्दू नज़्म व नसर (गद्य, पद्य) में जगह दिया. कारण स्पष्ट है . कबीर इस्लाम के एक अल्लाह को तो मानते थे, पर नमाज़ ' रोज़ा, हज वगैरह को बेकार समझते थे. हजरत मुहम्मद का दरजा कबीर के नज़दीक वह न था जो आम मुसलमानों या मौलवी मुल्लाओं का होता है.

इसके विपरीत हिंदुओं ने कबीर को अपनाया . हिंदुओं के सैकडों हजारों जात–पात और पंथों में एक कबीर–पंथ भी है. बनारस में उसका एक मठ भी है, जिसकी गद्दी बराबर चल रही है. क्या सचमुच कबीर मुसलमान की अपेक्षा हिंदू ज्यादा थे ? ऐसी बात नहीं है . हिंदुओं के देव मंदिरों की समान रूपसे निंदा करते हुए भी वह वेद उपनिषदों के सार का ही प्रचार करते थे . इसलिए हिंदू उसे बुरा

नहीं मानते थे . कबीर की ओर झुकनेका कारण एक ज़बरदस्त और है . हिंदुस्थान में उस समय हुकूमत मुसलमानों की थी . कहीं कहीं जोर जुल्म भी था . तबलीग़ भी जारी थी . ऐसे समय एक मुसलमान का समान रूप से हिंदुओं और मुसलमानों की कुरीतियों का खंडन करना और मेल-मिलाप की बात करना कबीर जैसे बीर ही के मान की बात थी . कबीर-पंथ का प्रचार केवल उत्तर भारत तक ही रहा . पर कबीर के पदों का प्रचार भारत के सभी कोनों और सभी भाषाओं मे हुआ . आसेतु हिमाचल कथा-कीर्तन में आज भी उनके दोहे दुहराये जाते हैं .

किसी व्यक्ति को अपनाने के बाद कहीं न कहीं से उससे अपना नाता निकाल लेना दुनिया का कायदा है . कबीर के साथ भी ऐसा ही हुआ . नाम मुसलमानी, माँ बाप मुसलमान, बीवी बेटे मुसलमान, ऐसे कबीर के बारे में कहा जाता है कि नव-जात कबीर को उसकी ब्राह्मणी माँ ने किसी तालाब पर फेंक दिया था . दलील तो ठीक है कि ब्राह्मण का बीज है, इसलिए ब्रह्मज्ञानी हुआ .

कबीर विद्वान तो नहीं, पर बडे ज्ञानी थे . अपना जाति-पेशा कर्घा चलाते हुए समाज सुधार की चेष्टा करनेवाले भारतवर्ष के इने-गिने कर्म-योगियों में महात्मा कबीर की भी गिनती है . कबीर के गीतों की कई पुस्तकें छपी हैं. इनका जीवन काल सन् १४०० ई० से १४९६ ई० तक बताया जाता है . यह काशी में पैदा हुए, मगहर मे मरे .

— —

कबीर के कुछ दोहे • • •

सांच बराबर तप नही,
झूट बराबर पाप।
जाके हिरदय सांच है,
ताके हिरदय आप॥

* * *

सीलवंत सबतें बड़ा,
सर्व रतन की खान
तीन लोक की सम्पदा,
रही सील में आन॥

* * *

बड़ा हुआ तो क्या हुआ,
जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं,
फल लागे अति दूर॥

* * *

निंदक नियरे राखिए,
आंगन कुटी बनाय।
बिन पानी साबुन बिना,
निर्मल करै सुभाय॥

बुरा जो देखन मैं चला,
बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजा आपना,
मुझसा बुरा न कोय ॥

* * *

कामी क्रोधी लालची,
इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा,
जाति वरन कुल खोय ॥

* * *

दुख में सुमिरन सब करैं,
सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करैं,
दुख काहे को होय ॥

* * *

वस्तु कहीं, ढूंढै कहीं,
केहि विधि आवै हाथ।
कह कबीरा तब पाइये,
भेदी लीजै साथ ॥

जाति न पूछो साधु की,
पू छि ली जि ए ज्ञान।
मोल करो तलवांर का,
पड़ा रहन दो म्यान॥

* * *

वृक्ष कबहु नहिं फल भखें,
नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने,
साधुन धरा शरीर॥

* * *

मांगन मरन समान है,
मत कोई मांगो भीख।
मांगन ते मरना भला,
यह सत-गुरु की सीख॥

* * *

जहां दया तहं धर्म है,
जहां लोभ तहं पाप।
जहां क्रोध तहं काल है,
जहां छिमा तहं आप॥

कबिरा खड़ा बाजर में,
सब की मांगे खैर।
न काहू से दोस्ती,
ना काहू से बैर॥

* * *

दुनिया ऐसी बावली,
पत्थर पूजन जाय।
घरकी चक्की कोई ना पूजे,
जा को पीसो खाय॥

* * *

ना कुछ देखा ज्ञान ध्यान में,
ना कुछ देखा पोथी में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
जो कुछ देखा रोटी में॥

* * *

कबिरा गरब न कीजिए,
काल गहे कर केश।
ना जाने कित मारि है,
क्या घर क्या परदेस॥

माटी कहे कुम्हार से,
तू क्या रूंदे मोहि।
इक दिन ऐसा आयगा,
मैं रूंदूंगी तोय॥

* * *

आये हैं सो जायेंगे,
राजा, रंक, फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चलै,
एक बंधे जंजीर॥

* * *

इक दिन ऐसा होयगा,
कोइ काहू का नाहि।
घर की नारी को कहे,
तन की नारी नाहि॥

* * *

जा घट प्रेम न संचरै,
सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की,
सांस लेत बिन प्राण॥

पतिबरता पति को भजै,
और न आन सुहाय।
सिंह पड़ा जो लंघना,
तो भी घास न खाय॥

* * *

जो तोको कांटा बुवै,
ताहि बोय तू फूल।
तोहि फूल को फूल है,
वाको है तिरसूल॥

* * *

ऐसी बानी बोलिए,
मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै,
आपहु सीतल होय॥

* * *

सांचे कोई न पतीजई,
झूठे जग पतियाय।
गली गली गो-रस फिरै,
मदिरा बैठि बिकाय॥

साहेब से सब होत है,
बंदे से कछु नाहि।
राई सों पर्वत करे,
पर्वत राई माई॥

* * *

कालि करता अबहि करु,
अब करता सुई ताल।
पाछे कछू ना होयगा,
जो सिर पर आवै काल॥

* * *

कबीर माला काठ की,
कहि समुझावै तोहि।
मन न फिरावै आपना,
कहा फिरावै मोहि॥

* * *

काबा फिर कासी भया,
राम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया,
बैठ कबीरा जीम॥

काजल केरी कोठडी,
तैसा यहु संसार।
बलिहारी ता दास की,
पैं सिर निकसनहार॥

* * *

मैं मैं बडी बलाइ है,
सकै तौं निकसी भांजि।
कब लग राखौं हे सखी,
रुई पलेटी आगि॥

* * *

पानी ही ते हिम भया,
हिम ह्वै गया बिलाउ।
जो कछु था सोई भया,
अब कछु कह्या न जाय।

* * *

लेखा देना सहज है,
जो दिल सांचा होय।
सांई के दरबार में,
पला न पकरै कोय॥

माला फेरत जुग भया,
मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारिके,
मन का मनका फेर॥

* * *

मेरा तुझ में कुछ नहीं,
जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सोंपते,
क्या लागत है मोर॥

* * *

साधू भूखा भाव का,
धन का भूखा नाहि।
धन का भूखा जो फिरै,
सो तो साधू नाहि॥

* * *

चाह गई चिंता मिटी,
मनुवा बे परवाह।
जिनको कछू न चाहिए,
सो ई साहनसाह॥

——

गोस्वामी तुलसी दास

महात्मा पुरुषों की जीवनियों में कोई न कोई विशेषता जरूर पायी जाती है. तुलसी की मां का नाम हुलसी था. वह इसके पैदा होते ही मर गयी बाप ने असगुन मान कर बच्चे को छोड दिया. कहीं पला. कहीं बढा कहीं शादी की. ऐसी दशा में तबीअत में स्वच्छंदता और आज़ादी आही जाती है. गृहस्थी अस्तव्यस्त होती है. पत्नी झगड़ कर नैहर चली जाती है. गोसांई जी पीछे पीछे पहुंचते हैं. पत्नी फटकार सुनाती है. तुलसी निकल पड़ते हैं. बैरागी बनते हैं. साधु महात्माओं के साथ रहते हैं.

प्रखर बुद्धि, विशाल अनुभव और सत्संग से तुलसीदास में ज्ञानोदय हुआ. यह ज्ञानी भी थे और विद्वान कवि भी. हिंदी जगत में तुलसी की तुलना किसी दूसरे कवि से नहीं की जा सकती. हज़ारों बरसों के भारत भर की भाषाओं में तुलसी के समान प्रतिभावान विद्वान एक हाथ की उंगलियों पर गिने जा सकते हैं. तुलसी की सबसे बडी खूबी यह है कि उनकी कविता का मान पंडित, पामर सब में बराबर है. विद्वान भी रस लेते हैं. किसान भी चाव से सुनते हैं. उत्तर भारत में ऐसे हिंदू बिरले ही होंगे, जिन्हें तुलसी रामायण के कुछ न कुछ दोहे, चौपाइयां याद न हों, और काफी तादाद मे ऐसे मुसलमान भी पाये जाते हैं.

तुलसीदास की वैसे बहुत सी पुस्तकें हैं. किंतु रामायण या रामचरित मानस का ही सबसे ऊँचा स्थान है. तुलसी सब कुछ लिखते हुए भी यदि रामायण न लिखते तो वह मान या स्थान न होता

जो आज उनका हिंदी जगत में है. उसी से ; सार्वभौम कवि बने. तुलसी की दूसरी विशेषता है शब्द और ।ावों पर परिपूर्ण अधिकार. साधारण बोलचाल की भाषा को कविता के सर्वोच्च सिंहासन पर जा बिठाना और संस्कृत के कठिन शब्दों को बोल–चाल की भाषा में ढाल लेना, भावों को सुगमता से कह जाना और सीधे सुनने वाले के दिल में उतार देना, यह तुलसी का ही हिस्सा था.

गोस्वामी तुलसीदास का काल सन 1533 ई. से सन 1630 ई. तक माना जाता है. बांदा में पैदा हुये. काशी मे मरे. पर गोस्वामी तुलसीदास को अवधी कहना उपयुक्त है, क्योंकि उन्होनें अवधपुरी अयोध्या के गुण गाये हैं, अवधेश श्री रामचंद्र जी के अनन्य भक्त रहे हैं और राम चरित्र मानस में अवधी बोली की सर्वोच्च सेवा की है.

परशुराम – लक्ष्मण संवाद

परशुराम का आगमन

तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा,
आयउ भृगुकुल कमल पतंगा,

देखि महीप सकल सकुचाने,
बाज झपट जनु लवा लुकाने,

गौर सरीर भूति भल भ्राजा,
भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा,

सीस जटा ससि बदनु सुहावा,
रिस बस कछुक अरुन होइ आवा,

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते,
सहजहुं चितवत मनहु रिसाते,

बृषभ कंध उर बाहु बिसाला,
चारु जनेऊ माल मृग छाला,

कटि मुनि बसन तून दुई बांधें,
धनु सर कर कुठारु कल कांधें.

सांत बेषु करनी कठिन वरनि न जाई स्वरूप,
धरि मुनि तनु जनु बीर रसु आयउ जहं सब भूप.

देखत भृगुपति बेषु कराला,
उठे सकल भय बिकल भुआला,

पितु समेत कहि कहि निज नामा,
लगे करन सब दंड प्रणामा,

जेहि सुभायं चितवहिं हितु जानी,
सो जानइ जनु आइ खुटानी,

जनक बहोरि आई सिरनावा,
सीय बोलाई प्रणामु करावा,

आसिष दीन्ह सखी हरषानी,
निज समाज लै गई सयानी,

बिस्वामित्र मिले पुनि आई,
पद सरोज मेले दोउ भाई,

राम-लखन दशरथ के ढोटा,
दीन्हि असीष देखि भल जोटा,

रामहि चितहि रहेथ कि लोचन.
रूप अपार भार मद मोचन.

बहुरि बिलोकि विदेह सन कहहु काह अति भीर,
पूँछत जानि अजान जिमि व्यापेउ कोप शरीर.

समाचार कहि जनक सुनाये,
जेहि कारण महीप सब आये,

परशुराम का क्रोध

अति रिस बोले बचन कठोरा,
कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा,

बेगि दिखाउ मूढ नत आजू,
उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू,

सेवक सो जो करै सेवकाई,
अरि करनी करि करिअ लराई,

सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा,
सहस बाहु सम सो रिपु मोरा,

सो बिलगाउ बिहाय समाजा,
नत मारे जैहहिं सब राजा.

लक्ष्मण

बहु धनुही तोरेउ लरिकाई,
कबहु न असि रिस कीन्ह गोसाईं.

परशुराम

रे नृप बालक कालबस बोलत तोहि न संभार,
धनु ही सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल संसार,

लक्ष्मण

का छति लाभु जून धनु तोरें,
देखा राम नयन के भोरें,

छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू,
मुनि बिनु काज करिय कत रोसू,

परशुराम

बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही,
केवल मुनि जन जानहि मोही,

बाल ब्रह्मचारी अति कोही,
बिस्व विदित छत्रिय कुल द्रोही,

भुजबल भूमि भूप बिन कीन्ही,
विपुल बार महि देवन्ह दीन्ही,

सहस बाहु भुज छेदनि हारा,
परसु बिलोकु महीप कुमारा,

मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीस किसोर'
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर,

लक्ष्मण

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी,
अहो मुनीस महा भट मानी,
पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारा,
चहत उड़ावन फूंकि पहारा,

इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं,
जे तरजनी देखि कुम्हिलाहीं,
देखि कुठारु सरासन बाना,
मैं कछु कहा सहित अभिमाना,

भृगुसुत समुझि जनेऊ बिलोकी,
जोकछु कहहु सहऊँ रिस रोकी,
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई,
हमरे कुल इन्ह पर न सुराई,

बधें पाप अपकीरति हारें,
मारतहुं पा परिअ तुम्हारें,
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा,
व्यर्थ धरहु धनुवान कुठारा.

परशुराम

कौसिक सुनहु मंद यह बालकु,
कुटिल काल बस निज कुल घालकु,
भानुवंश राकेस कलंकू,
निपट निरंकुस अबुध असंकू,
काल कवरु होइहि छन माहीं,
कहहुं पुकारि खोरि मोहि नाही,
तुम हटकहु जो चहहुं उबारा,
कहि प्रताप बल रोषु हमारा,

लक्ष्मण

आपने मुंह तुम आपनि करनी,
बार अनेक भांति बहु बरनी,
नहि संतोषु त पुनि कछु कहू,
जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू,
बीर ब्रती तुम्ह धीर अछोभा,
गारी देत न पावहु सोभा,

सूर समर करनी करहि कहि न जनावहिं आपु,
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु.

तुम्ह तौ कालु हाँक जनुलावा,
बार बार मोहि लागि बोलावा,

परशुराम

अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू,
कटु बादी बालक बधु जोगू,

बाल विलोकि बहुत मैं बांचा,
अब यहु भरनि हार भा सांचा,

खर कुठार मैं अकरुन कोही,
आगे अपराधी गुरु द्रोही,

उतर देत छोड़उं बिनु मारे,
केवल कौसिक सील तुम्हारे,

नत एहि काटि कुठार कठोरें,
गुरहिउ रिन होतेऊँ श्रम थोरें.

लक्ष्मण

मात पितहि उरिन भए नीकें,
गुरु रिनु रहा सोचु बड़ जीकें,

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा,
दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा,
अब आनिय ब्यवहरिआ बोली,
तुरत देउँ मैं थैली खोली,

रामचन्द्र

नाथ करहु बालक पर छोहू,
सूध दूध मुख करिअ न कोहू,
जौं पै प्रभु प्रभाव कछु जाना,
तौ कि बराबरि करत अयाना,
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं,
गुर पितु मातु मोद मन भरही,
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी,
तुम्ह सम सील धीर मुनि ज्ञानी,

परशुराम

गौर सरीर स्याम मन माही,
काल कूट मुख पय मुख नाहीं,

सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही,
नीचु मीचु सम देख न मोही.

लक्ष्मण

मैं तुम्हारा अनुचर मुनिराया,
परि हरि कोप करिय अब दाया,
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने,
बैठिअ होइहिं पाय पिराने,
जों अति प्रिय तौ करिअ उपाई,
जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई.

परशुराम

मनु मलीन तनु सुंदर कैसे,
बिष रस भरा कनक घटु जैसे.

रामचन्द्र

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना,
बालक बचनु करिअ नहिं काना,
बरैं बालकु एकु सुभाऊ,
इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ,

ते हि नाहीं कछु काज बिगारा,
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा,

कृपा कोपु बधु बधबँ गोसाई,
मो पर करिअ दास की नाई,

कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई,
मुनि नायक सोई करूँ उपाई.

परशुराम

कह मुनि राम जाइ रिस कैसें,
अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें,

एहि के कंठ कुठार न दीन्हा,
तो मैं काह कोप करि कीन्हा,

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती,
भा कुठारु कुंठित नृपघाती,

भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ,
मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ.

लक्ष्मण

बांउ कृपा मूरति अनुकूला,
बोलत बचन झरत जनु फूला,

जों पै कृपा जरिहिं मुनि गाता,
क्रोध भयें तनु राख विधाता.

परशुराम

देखु जनक हठि बालकु ऐहू,
कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू,
बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा,
देखत छोट खोट नृप ढोटा,

लक्ष्मण

बिहसे लखनु कहा मन माहीं,
मूदें आँखि कतहुँ हूं कोउ नाही,
बंधु कहइ कटु संमत तोरें,
तू छल बिनय करसि कर जोरें,
करु परितोषु मोर संग्रामा,
नाहित छाड़ कहाउब रामा,
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही,
बंधु सहित न मारउँ तोही,

रामचन्द्र

गुनह लखन कर हम पर रोषू,
कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू,

टेढ़ जानि सब बंदइ काहू,
बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू,

रामचंद्र

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा,
कर कुठारु आगे यह सीसा,

जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी,
मोहि जानिअ आपन अनुगामी,

प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोगु,
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु,

देखि कुठार बान धनुधारी,
भै लरकहि रिस बीरु बिचारी,

नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा,
बंस सुभायँ उतरु तेहि दीन्हा,

जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं,
पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं,

छमहु चूक अनजानत केरी,
चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी,

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा,
कहहु न कहाँ चरण कहँ माथा,

राम मात्र लघु नाम हमारा,
परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा,

देव एकु गुनु धनुष हमारें,
नव गुन परम पुनीत तुम्हारें,

सब प्रकार हम तुम सन हारे,
छमहु बिप्र अपराध हमारे,

परशुराम

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही,
मैं जस बिप्र सुनावउं तोही,

चाप स्रुवा सर आहुति जानू,
कोप मोर अति घोर कृसानू,

समधि सेन चतुरंग सुहाई,
महा महीप भये पसु आई,

मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हें,
समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे,

मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें,
बोलसि निदरि बिप्र के भोरें,

भंजेहु चापु दापु बड़ बाढ़ा,
अहमिति मनहुं जीति जगु ठाढ़ा.

रामचन्द्र

राम कहा मुनि कहहुँ बिचारी,
रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी,

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना,
मैं केहि हेतु करौं अभिमाना,

जौं हम निदरहिं बिप्र बीद सत्य सुनहु भृगुनाथ,
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहि माथ,

देव दनुज भूपति भट नाना,
समबल अधिक होउ बलवाना,

जौं रन हमहिं पचारै कोऊ,
लरहि सुखेन कालु किन होऊ,

छत्रिय तनु धरि समर सकाना,
कुल कलंकु तेहि पावंर आना,

कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी,
कालहु डरहिं न रन रघुबंसी,

बिप्र बंस कै असि प्रभुताई,
अभय होइ जो तुम्हहि डेराई,

राम रमापति कर धनु लेहू,
खैचंहु चाप मिटै संदेहू,

देत चाप आपुहिं चलि गयऊ,
परशुराम मन बिसमय भयऊ,

राम सीता संवाद

दिवस जात नहि लागहि बारा,
सुदरि सिखवन सुनहु हमारा,

जों हठ करहु प्रेम बस बामा,
तो तुम दुख पाउब परिनामा,

कानन कठिन भयंकर भारी,
घोर घाम हिम बारि बयारी,

कुस कंटक मग कंकर नाना,
चलब पयादेहिं बिनु पद-त्राना,

मारग अगम भूमिधर भारे,
चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे,

कंदर खोह नदी नद नारे,
अगम अगाध न जाहि निहारे,

भालु, बाघ बृक केहरि नागा,
करहि नाद सुनि धीरजु भागा,

भूमि सयन बलकल बसन, असनु कंद फल मूल,
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल,

नर आहार रजनी चर करही,
कपट वेष बिधि कोटिक फिरही,

लागई अति पहार कर पानी,
बिपिन बिपति नहिं जाइ बरबानी,

व्याल कराल बिहग बन घोरा,
निसिचर निकर नारि नर चोरा,

डर पहि धीर गहन सुधि आएँ,
मृग लोचनि तुम भीरु सुभाएँ

हंस गमनि तुम नहिं बन जोगू,
सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू,

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली,
जिअइ कि लवन पयोधि मराली,
नव रसाल बन बिहरन सीला,
सोह कि कोकिल बिपिन करीला.

रामचंद्र

रहहु भवन अस हृदय बिचारी,
चंद बदनि दुखु कानन भारी.
सहज सुहृद गुरुस्वामी सिख जो न करइ सिरमानि
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि.

× × ×

सुन मृदु बचन मनोहर पिय के,
लोचन ललित भरे जल सियके,
सीतल सिख दाहक भई कैसे,
चकइहि सरद चंद निसि जैसे,
उतरु न आव विकल बैदेही,
तजन चहत मोहि स्वामि सनेही,
बरबस रोकि बिलोचन बारी,
धरि धीरजु उर अवनि कुमारी.

× × ×

प्राणनाथ करुणायतन, सुंदर सुखद सुजान,
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान.

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई,
प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई,
सास ससुर गुरु सुजन सहाई,
सुत सुंदर सुसील सुखदाई,
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते,
पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते,
तनु धनु धाम धरनि पुर राजू,
पति विहीन सब शोक समाजू,
भोग रोग सम भूषण भारू,
जम यातना सरिस संसारू,
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं,
मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं,
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी,
तैसेई नाथ पुरुष बिनु नारी,
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे,
सरल विमल विधु बदनु निहारे.
खग मृग परिजन नगरु बन वलकल विमल दुकूल,
नाथ साथ सुर सदन सम परन साल सुख मूल.

बन देवी बन देव उदारा,
करिहहिं सासु ससुर सम सारा,

कुस किसलय साथरी सुहाई,
प्रभु संग मंजु मनोज तुराई,

कंद मूल फल अमिय अहारू,
अवध सौधसम सरिस पहारू,

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी,
रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी,

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे,
भय विषाद परिताप घनेरे,

प्रभु वियोग लवलेस समाना,
सब मिलि होहिं न कृपा निधाना,

अस जिय जानि सुजान सिरोमनि,
लेइय संग मोहि छाड़िय जनि,

बिनती बहुत करों का स्वामी,
करुणामय उर अंतरजामी.

राखिय अवध जो अवधिलगि, रहत न जनिअहिं प्रान,
दीन बंधु सुंदर सुखद, सील सनेह निधान.

मोहि मग चलत न होइहि हारी,
छिन छिन चरन सरोज निहारी,

सबहि भाँति पिय सेवा करिहों,
मारग जनित सकल श्रम हरिहों,

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं,
करिहऊं बाउ मुदित मन मांही,

श्रम कन सहित स्याम तनु देखें,
कहुं दुखु समउ प्रानपति पेखें,

सम महि तृण तरु पल्लव डासी,
पाय पलोटहि सब निसि दासी,

बार बार मृदु मूरति जोही,
लागहि तात बयारि न मोही,

को प्रभु संग मोहि चितवन हारा,
सिंधु बधुहि जिमि ससक सियारा,

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू,
तुमहिं उचित तप मो कहं भोगू.

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जों न हृदय बिलगान,
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावंर प्रान,

× × × ×

अस कहि सीय विकल भइ भारी,
बचन वियोगु न सकी सभारी,

देखि दशा रघुपति जियं जाना,
हठि राखे नहिं राखहिं प्राना,

कहेउ कृपालु भानु कुलनाथा,
परिहरि सोचु चलहु बन साथा.

—

रहीम

अपने को 'अब्दुल रहीम खानान खान' से 'रहीम' और रहीम से 'रहिमन' कहलाकर हिंदी जगत में स्थायी गौरव प्राप्त करना रहीम के जीवन का सार है. दरबार अकबरी का नव रत्न होकर भी, बादशाह का उस्ताद, सिपाह–सालार और वजीर रहकर भी रहमन का बाप बैरम खाँ आखर अकबर से तिरस्कृत होकर एक मामूली अफ़गानी के हाथों बेमौत मरा. रहमन की भी कुछ ऐसी ही दशा हुई. शहनशाह अकबर के हाथ शिक्षा दीक्षा पाकर, उसी की दया से शादी भी बडे घराने में कर कर, बडी बडी लडाइयों में अकबर का दायां हाथ बनकर और मुगल दरबार से बडी जागीर पाकर, रहीम भी अपने बाप बैरमखाँ की तरह शहन्शाह जहाँगीर से मातूब और तिरस्कृत होकर, जागीर खोकर दीन हीन दशा में चित्रकूट में मरा–रहीम राम से जा मिला इन. तमाम बातों का एक मनस्वी पुरुष पर जो उत्तम प्रभाव पड़ता है, वही रहीम पर पडा और यही सीख रहीम ने अपनी कविता में जगत को दी. रहिमन की दूसरी महानता, जो पहले से भी बडी है, उसकी भाषा है. मुगल दरबार में देशी भाषा का गौरव बढाने वाला पहला कवि रहमन है. फारसी उसकी भाषा, अरबी, तुरकी का पंडित, मगर रहिमन ने अपनी कविता के लिए हिंदुस्तान की पंडिताऊ नहीं, बल्कि जन–भाषा को अपनाया. रहिमन वीर था, विद्वान था, प्रेमी था, दानी था और ज्ञानी था· रहिमन ने अपने दान को ज्ञान का कैसा कवच दिया था, उसकी बहुत सारी कविताएं हैं; जैसे गंग कवि के इस पद पर —

"सीखे कहां नवाबजू, ऐसी बैनी बैन,
ज्यों ज्यों कर ऊंचे करो, त्यों त्यो नीचे नैन."

क जवाब में रहिमन ने लिखा —

देनहार कोई और है, भेजत सो दिन रैन,
लोग भरम हम पर करैं याते नीचे नैन.

इसी तरह गोस्वामी तुलसीदास ने एक कन्या की शादी के खर्च के लिए यह पद लिख भेजा —

" सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय "

रहिमन उसके पिता को काफी धन देकर तुलसी के ऊपर वाले पद को अपने इस नीचे के पद से पूरा कर भेजा —

" गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय ! "

रहीम के दोहे

जे गरीब पर हित करें,
ते रहीम बड़ लोग.
कहाँ सुदामा बापरो,
कृष्ण मिताई योग.

जे रहीम बिधि बड़ किये,
को कहि दूषन काढ़ि.
चन्द्र दूबरो कूबरो,
तऊ नखत ते बाढ़ि.

जैसी जाकी बुद्धि है,
तैसी कहै बनाय,
ताको बुरा न मानिए,
लैन कहाँ सूं जाय.

जैसो परै सो सहि रहे,
कहि रहिम यह देह.
धरती ही पर परत है,
सीत घाम औ मेह.

जो बड़न को लघु कहे,
नहि रहीम घट जाहिं,
गिरिधर मुरलीधर कहे,
कछु दुख मानत नाहिं.

जो रहीम गति दीप की,
सुत सपूत गति सोय,
बढ़े उजेरो तेहि रहे,
गये अंधेरो होय.

सभय दसा कुल देखि के,
सबै करंत सनमान,
रहिमन दीन अनाथ को,
तुम बिन को भगवान.

सर सूखे पंछी उडै,
औरे सरन समाहि,
दीन मीन बिन पच्छ के,
कहु रहीम कहँ जाहि.

कहि रहीम संपति–सगे,
बनत बहुत बहु रीत,
विपत्ति कसौटी जे कसें,
सोही साँचे मीत.

रहिमन पानी राखिए,
बिनु पानी सब सून,
पानी गयें न ऊबरे,
मोती मानुष चून.

खीरा सिरतें काटिए,
मलिए नमक मिलाय
रहिमन करुए मुखन को,
चहियत यही सजाय.

ससि संकोच साहस,
सलिल, भान सनेह रहीम,
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है,
घटत घटत घटि सीम,

जो रहीम उत्तम प्रकृति,
का करि सकत कुसंग
चंदन विष व्यापत नहीं,
लपटे रहत भुजंग

जो विषया संतन तजी,
मूढ़ ताहि लपटात,
ज्यों नर डारत वमन कर,
स्वान स्वाद कर खात.

टूटै सुजन मिलाइए,
जौ टूटे सौ बार,
रहिमन फिरि फिरि पोइए,
टूटे मुक्ता हार.

तरुवर फल नहिं खात हैं,
सखंर पियहि न पान,
कहि रहीम पर काजहित,
संपति संचहि सुजान.

दीन सबन को लखत है,
दीनहिं लखै न कोय,
जो रहीम दीनहिं लखै,
दीन बन्धु सम होय.

दुरदिन परे रहीम कहि,
भूलत सब पहचानि,
सोच नहीं वित हानि को,
जो न होय हित हानि.

पावस देखि रहीम मन,
कोइल साधे मौन,
अब दादुर वक्ता भये,
हम को पूछत कौन.

यह रहीम निज संग लै,
जनमत जगत न कोय,
बैर प्रीति अभ्यास जस,
होत होत ही होय.

रहिमन ओछे नरन सों,
बैर भलो न प्रीत,
काटे चाटे स्वान के,
दो उ भांति वि परी त.

रहिमन कबहुं बडेन के,
नाहि गर्व को लेस,
भार धरें संसार को,
तऊ कहावत सेस.

रहिमन तीन प्रकार ते,
हित अनहित पहिचानि,
पर बस परे परोस बस,
प रे मामिला जानि.

रहिमन दुर दिन के परे
बडे न कि ये घटि काज,
पां च रूप पांडव भ ये,
रथ वाहक नल राज,

रहिमन देख बड़ेन को,
लघु न दीजिए डार,
जहां काम आवै सुई,
कहा करे तलवार.

रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोडो चिटकाय,
टूटे ते फिर ना जुरें,
मिले गांठ पड़ि जाय.

रहिमन निज मन की व्यथा,
मन ही राखो गोय,
सुनि अठि लैहैं लोग सब,
बांटि न लैहैं कोय.

रहिमन निज संपति बिना,
कोऊ न विपति सहाय,
बिनु पानी ज्यों जलज को,
नहिं रवि सकै बचाय.

रहिमन नीचत संग बसि,
लगत कलंक न काहि,
दूध कलारी कर गहें,
मद समुझै सब ताहि.

दोनों रहिमन एकसे,
जौ लौं बोलत नाहि,
जान परत है काक पिक,
ऋतु व संत के माहि.

एकै साधै सब सधै,
सब साधै सब जाय,
रहिमन मूलहि सींचिबो,
फूलहि फलहि उघाय

औछो काम बड़े करें,
तो न बड़ाई होय,
ज्यों रहीम हनुमन्त को,
गिरि धर कहै न कोय.

जो रहीम ओ छोब डं,
तौ अति ही इतरा य,
प्यादे ते फर जी भ यो,
टेढो टेढो जाय.

रहिमन लाख भली करो,
अगुनी अगुन न जाय,
राग सुनत पय पियत हू,
साँप सहज धरि खाय.

रहिमन बिद्या बुद्धि नहिं,
नहिं धरम जस दान,
भू पर जन्म वृथा धरै.
पसु बिन पूछ विषान

जो रहीम मन हाथ है,
तो तन कहुँ किन जाहिं,
जल में जो छाया परें,
काया भीजत नाहिं.

मैथिलीशरण गुप्त

यह राष्ट्रीयता का युग है. "भारत-भारती" लिख कर गुप्तजी ने "राष्ट्रीय कवि" का पद पाया है. यह गौरव किसी और कवि को प्राप्त नहीं है. अलताफ हुसेन हाली से इन की तुलना की जाती है, पर महा-कवियों में इस तरह तुलना करने की गुंजायश नहीं होती, दोनों अपनी-अपनी जगह ऊंचे हैं. गुप्तजी भारत के प्राचीन आदर्श को मानते हैं, परन्तु प्राचीन आदर्श की रट लगा कर, यह सुधार विरोधी काम करने वाले नहीं हैं. समाज के पीड़ित वर्ग के प्रति इन के दिल में बड़ा दरद है. बुद्ध की माता यशोधरा और लक्ष्मण की पत्नी ऊर्मिला पर लिख कर गुप्तजी ने स्त्री समाज के प्रति ही नहीं, वरना उपेक्षित नारी शिरोमणियों के प्रति समाज के कर्तव्य का निरुपण किया है. गुप्तजी का व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक जीवन वैश्य कुल का एक सुन्दर नमूना है. उन्हें हम एक ऐसे शुद्ध ब्राह्मण कह सकते हैं जिन के दिल में शूद्र कहलाने वाले पददलितों के प्रति पूरी सहानुभूति है. सरस्वती और समाज की सेवा साथ-साथ करने वाले साधकों में गुप्तजी की गणना है. गुप्तजी की रचना में अगर वीर रस भरा हुआ है तो उनका जीवन भी एक वीर क्षत्रिय से कम नहीं है. वयोवृद्ध गुप्तजी अपनी साठ साल की अवस्था में अपने परिवार के कई एक भाई और उन के पुत्र मित्रों के साथ अंग्रेजों के आखरी दिनों में आगरा सेंट्रल जेल में बंद रहे. 1857 के रानी लक्ष्मीबाई के झांसी जिले में चिरगांव इन का चिर निवास है.

कवि

कवि अनूठे कलाम के बल से,
हैं बडा ही कमाल कर देते.

बधने के लिए कलेजों को,
हैं कलेजा निकल धर देते.

क्यों न दिल खींच के उपज आला,
जो कि उपजी कमाल भी कुछ ले.

जिन पदों मे छलक रहा है रस,
क्यों कलेजा न सुन उसे उछले.

तज उसे कौन है भला ऐसा,
दिल कमलसा खिला मिला जिसका.

फूल मुंह से झडे किसी कविके,
है कलेजा न फूलता किसका,

भेद उसने कौन से खोले नहीं,
कौन सी बातें नहीं उसने कहीं.

दिल नहीं उसने टटोले कौन से,
घुस गया कवि किस कलेजे में नहीं,

है जहां कोई पहुंच पाता नहीं,
वह यहां आसन जमा है बैठता,

सूझ - मठ में पैठ - बस रस - पैंठ में,
किस कलेजे में नहीं कवि बैठता.

जो रही किसका नहीं मोहती,
हाथ में किसके वह अजब माला लसी.

छोड कवि बस कर दिखाने की कला,
है भला किसके कलेजे में बसी.

रस रासक पागल सलोने भाव का,
कौन कवि सा है लुनाई का सगा,

लोक हित - गजरा लगन- फूलों बना,
है रखा किसने कलेजे से लगा?

होली

मान अपना बचाओ, मस्हल कर पांव उठावो
गावो भाव भरे गीतों को, बाजे डमग बजावो,
तानें ले ले रस बरसावो, पर ताने न महावो,
भूल अपने को न जावो.

बात हंसी की मरजादा मे, कह कर हंसो हंसावो,
पर अपने को बात बुरी, कह आंखों न गिरावो,
हंसी अपनी न करावो.

खेलो रंग अबीर उडावो, लाल गुलाल लगावो,
पर अति सुरंग लाल चादरको, मत बदरंग बनावो,
न अपना रंग गंवावो.

जन्मभूमि की रजको लेकर, सिरपर ललक चढावो
पर अपने ऊंचे भावों को, मिट्टी में न मिलावो,
न अपनी धूल उडावो.

प्यार उमंग रंग में भीगो, सुंदर फाग मचावो,
मिल जुल जी की गांठे खोलो, हितकी गांठ बंधावो,
प्रीति की बेलि उगावो.

दुखिया के आंसू

बावले मे घूमते जी में मिले,
आंख मे बेचैन बनते ही रहे,
गिर कपोलों पर पड़े बेहाल से,
बात दुखिया आंसुओं की क्या कहें !

हैं व्यथायें सैकड़ों इन में भरी,
ये बड़े गम्भीर दुख में है सने,
पर इन्हें अवलोक करके दो बता,
हैं कलेजा थामते कितने जने !

बालकों के आंसुओं को देखकर,
है उमड़ आता पिता उर प्रेम मय,
कौनसी इन आंसुओ में है कसर,
जग-जनक भी जो नहीं होता सदय,

चंद-बदनी आंसुओं पर प्यार से,
हैं बहुत से लोग तन मन वारते,
एक ये हैं लोग जिनके वास्ते,
हैं नहीं दो बूंद आंसू डालते,

क्या न कर डाला खुला जादू किया,
आंख के आंसू कढे या जब बहे,
किंतु ये ही कुछ हमें ऐसे मिले,
हाथ ही में जो विफलता के रहे,

पोंछ देने के लिए धीरे इन्हें,
है नहीं उठता दयामय कर कहीं,
इन बिचारों पर किसी हमदर्द की,
प्यार वाली आंख भी पड़ती नहीं,

क्यों उरों से ये दृगों में आकढे
था भला, जो नाश हो जाते वहीं,
जो किसी का भी इन्हें अवलोक कर,
मन न रोया, जी पसीजा तक नहीं,

भाग फूटा, बेबसी लिपटी रही,
बहु, दुखों से ही सदा नाता रहा,
फिर अजब क्या, इस अभागे जीव के,
आंसुओं का जो असर जाता रहा.

बह पडी जो धार दुखिया आंख मे,
क्यों न पानी ही उसे कहते रहें,
है नहीं जिसने जगह जी में किया,
हम भला कैसे उसे आंसू कहें,

है कलेजे को घुला देना कोई,
मैल चितवन पर कोई लाता नहीं,
कौन दुखिया आंसुओं पर हो सदय,
पूछ ऐसो की नही होती कहीं.

—

मैथिलीशरण गुप्त

यह राष्ट्रीयता का युग है. "भारत-भारती" लिख कर गुप्तजी ने "राष्ट्रीय कवि" का पद पाया है. यह गौरव किसी और कवि को प्राप्त नहीं है. अलताफ हुसेन हाली से इन की तुलना की जाती है, पर महा-कवियों में इस तरह तुलना करने की गुंजायश नहीं होती, दोनों अपनी-अपनी जगह ऊंचे हैं. गुप्तजी भारत के प्राचीन आदर्श को मानते हैं, परन्तु प्राचीन आदर्श की रट लगा कर, यह सुधार विरोधी काम करने वाले नहीं हैं. समाज के पीड़ित वर्ग के प्रति इन के दिल में बड़ा दरद है. बुद्ध की माता यशोधरा और लक्ष्मण की पत्नी ऊर्मिला पर लिख कर गुप्तजी ने स्त्री समाज के प्रति ही नहीं, वरना उपेक्षित नारी शिरोमणियों के प्रति समाज के कर्तव्य का निरुपण किया है. गुप्तजी का व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक जीवन वैश्य कुल का एक सुन्दर नमूना है. उन्हें हम एक ऐसे शुद्ध ब्राह्मण कह सकते हैं जिन के दिल में शूद्र कहलाने वाले पद्दलितों के प्रति पूरी सहानुभूति है. सरस्वती और समाज की सेवा साथ - साथ करने वाले साधकों में गुप्तजी की गणना है. गुप्तजी की रचना में अगर वीर रस भरा हुआ है तो उनका जीवन भी एक वीर क्षत्रिय से कम नहीं है. वयो-वृद्ध गुप्तजी अपनी साठ साल की अवस्था में अपने परिवार के कई एक भाई और उन के पुत्र मित्रों के साथ अंग्रेजों के आखरी दिनों में आगरा सेंट्रल जेल में बंद रहे. 1857 के रानी लक्ष्मीबाई के झांसी जिले में चिरगांव इन का चिर निवास है.

मातृ मंदिर

भारत माता का यह मंदिर,
समता का संवाद जहां,
सब का शिव कल्याण यहां है,
पावें सभी प्रसाद यहां,

जाति धर्म या संप्रदाय का,
नहीं भेद व्यवधान यहां,
सब का स्वागत सब का आदर,
सब का सम सम्मान यहां,

राम रहीम बुद्ध ईसा का,
सुलभ एक सा ध्यान यहां,
भिन्न भिन्न सब संस्कृतियों की,
गुण गौरव का ज्ञान यहां,

नहीं चाहिए बुद्धि बैर की,
भला प्रेम उन्माद यहां,
सबका शिव कल्याण यहां है,
पावें सभी प्रसाद यहां,

सब तीर्थों का एक तीर्थ यह,
हृदय पवित्र बना लें हम,
आओ यहाँ अजात-शत्रु बन,
सबको मित्र बना लें हम,

रेखाएँ प्रस्तुत हैं अपने,
मन के चित्र बना लें हम,
सौ सौ आदर्शों को लेकर,
एक चरित्र बना लें हम,

कोटि कोटि कंठों से मिलकर,
उठे एक जय नाद यहाँ,
सबका शिव कल्याण यहां है,
पावें सभी प्रसाद यहां,

मिला सत्य का हमें पुजारी,
सफल काम उस न्यायी का,
मुक्ति - लाभ कर्तव्य यहां है,
एक एक अनुयायी का,

बैठो माता के आंगन में,
नाता भाई भाई का,
समझे उसकी प्रसव - वेदना,
वही लाल है माई का,

एक साथ मिल बैठ बांट लो,
अपना हर्ष - विषाद यहां,
सबका शिव कल्याण यहां है,
पावें सभी प्रसाद यहां,

स्वयमागत

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊं मैं ?
सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है कैसे भीतर जाऊं मैं?
द्वारपाल भय दिखलाते हैं,
कुछ ही जन जाने पाते हैं,
शेष सभी धक्के खाते हैं,
कैसे घुसने पाऊं मैं?

तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
मुझ में सभी दैन्य दूषण हैं,
न तो वस्त्र हैं, न विभूषण हैं,
लज्जित किन्तु यहां पूषण हैं,
अपना क्या दिखलाऊँ मैं?

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊं मैं ?
मुझ में तेरा आकर्षण है,
किन्तु यहां घन सङ्घर्षण है,
इसीलिए दुर्धर घर्षण है,
क्यों कर तुझे बुलाऊँ मैं?

तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊं मैं?
तेरी विभव कल्पना करके,
उसके वर्णन में मन भर के,
भूल रहे हैं जन बाहर के,
कैसे तुझे बुलाऊं मैं?

तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊं मैं?
बीत चुकी है बेला सारी,
आई किन्तु न मेरी बारी,
करूँ कुटी की अब तैयारी,
वहीं बैठ पछताऊं मैं?

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊं मैं?
कुटी खोल भीतर आता हूं
तो वैसा ही रह जाता हूं,
तुझको यह कहते पाता हूं,
अतिथि कहो क्या लाऊं मैं?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊं मैं?

रचना

बनालो जहाँ, हाँ, वहीं स्वर्ग है.
स्वयं भूत थोड़ा कहीं स्वर्ग है.
खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है,
भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है.

सुनो स्वर्ग क्या है ? सदाचार है,
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है.
नहीं स्वर्ग कोई धरा-वर्ग है,
जहाँ स्वर्ग का भाव है स्वर्ग है.

सुखी नारकी जीव भी हो गए,
वहाँ धर्म राज स्वयं जो गये.
कदाचार ही गौरव गार है,
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है.

यहीं स्वर्ग चाहे बना लीजिये,
यहीं नारकीय सृष्टियां कीजिये,
नहीं कौन सी साधना है यहाँ,
वहीं सिद्धि है साधना है जहाँ.

यहाँ साधना क्षेत्र संसार है.
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है.
स्वयं क्यों न संसार निःसार हो,
भले ही यहाँ मृत्यु संचार हो.

नहीं किंतु विश्वेश है क्या यहाँ !
जहां इष्ट है, क्या नहीं है वहां ?
शरीरस्थ कर्ता क्रियाधार है.
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है.

जहां ज्ञान है, कर्म है, भक्ति है,
भरी कर्म में ईश्वरी शक्ति है.
जहां भुक्ति में मुक्ति का धाम है,
जहां मृत्यु के बाद भी नाम है.

वही भव्य संसार क्या भार है,
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है.
यही प्रेम है, द्रोह भी है यहीं,
यहीं ज्ञान है, मोह भी है यहीं,

यहीं पुराय है, पापभी हैं यहीं,
यहीं शान्ति है ताप भी है यहीं.
कहो क्या तुम्हें आज स्वीकर है,
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है.

जहां लोक-सेवा महा धर्म है,
जहां कामना छोड के कर्म है.
वहां आप ही आप उद्धार है.
मनुष्यत्व हो मुक्ति का द्वार है.

जहां कल्प वृक्ष स्वयं है हमी,
करें यत्न तो है हमें क्या कमी.
भरा कीर्ति से ही सुधासत्व है,
मनुष्यत्व ही दिव्य देवत्व है.

यही स्वर्ग संगीत का सार है.
मनुष्यत्व ही, मुक्ति का द्वार है.

आय का उपयोग

निकल रही है उर से आह,
ताक रहे सब तेरी राह.

चातक खडा चोंच खोले है,
सम्पुट खोले सीप खडी,
मैं अपना घट लिए खडा हूँ,
अपनी अपनी हमें पडी,

सबको है जीवन की चाह,
ताक रहे सब तेरी राह.

मैं कहता हूँ–मैं प्यासा हूँ,
चातक 'पी पी' रटता है,
व्यंग मानता हूं मैं उसको,
हृदय क्षोभ से फटता है,

पर क्या वह रखता है डाह ?
ताक रहे सब तेरी राह.

मैं अपनी इच्छा कहता हूं,
पर वह तुझे भुलाता है,
तुझ से अधिक उदार वही है,
पर भ्रम यहां भुलाता है,

किसको है किसकी परवाह,
ताक रहे सब तेरी राह.

हम अपनी अपनी कहते हैं,
किन्तु सीप क्या कहती है ?
कुछ भी नहीं, खोलकर भी मुँह,
वह नीरव ही रहती है,

उसके आशय की क्या थाह ?
ताक रहे सब तेरी राह.

घनश्याम, फिर भी तू सब की,
इच्छा पूरी करता है,
चातक, चञ्चु, सीप का सम्पुट,
मेरा घट ही भरता है,

सब पर तेरा दया–प्रवाह,
ताक रहे सब तेरी राह.

तेरे दया–दान का मैंने,
चातक ने भी भोग किया,
किन्तु सीप ने उसको लेकर,
क्या अपूर्व उपयोग किया,

बना दिया है मुक्ता वाह,
ताक रहे सब तेरी राह.

—

दशहरा

आ गया प्यारा दशहरा छा गया उत्साह बल
मातृ पूजा, शक्ति पूजा बीर पूजा है विमल

हिंद में यह हिंदुओं का विजय उत्सव है ललाम
शरदकी इस सु ऋतु में है खड्ग पूजा धाम धाम

दिखने लगे सज्जन यहां रहने लगे चकवा अशोक
चल पडे योगी यती मग की मिटी सब रोक टोक

भरने लगे बाजार हैं खुलने लगे व्यापार द्वार
सजने लगे सेना नृपति बजने लगे बाजे अपार

यह दशहरा क्षत्रियों का प्राण जीवन पर्व है
हिंद के इतिहास में इस पर्व का अति गर्व है.

वीर पुरुष को यही संजीवनी का काम दे
जीत दे फिर कीर्ति दे फिर मान दे धन धाम दे

थी विजय दशमी यही जब रामने दल साज कर
गिरि प्रवर्षण से चढाई की थी लंका राज पर

मार रावण को वहां उद्धार सीता का किया
और लंका बिभीषण को तिलक था दे दिया

उस समय से इस दशहरे का बड़ा सम्मान है
मान गुण का यह प्रवर्तक क्षत्रियों का प्राण है

आज करते हैं विजय की कामना सब बीर वर
जांचते हैं दृष्टि कर गज अश्व दल हथियार पर

श्रेय विजया के भरे इतिहास के बहु पत्र हैं
आज भी प्रतिबिम्ब उसका देखते हम अत्र हैं

जो सबक लेना हमें उससे उचित लेते नहीं
स्वार्थ पशु बलि त्याग की तलवार से देते नहीं

इन्द्रियों की वासना ही है असुर शंका नहीं
ज्ञानशर से जीतते हैं लोभ की लंका नहीं

हन्त जो कुविचार रावण है उसे तजते नहीं
क्या कहें सुविचार श्रीवर राम को भजते नहीं

नाश कर कुविचार का सद्बुद्धि सीता लाइए
नृप बिभीषण की तरह संतोष को अपनाइए.

शान्त की प्यारी अवध फिर राज्य उसका कीजिए;
'मीर' विजया की विजय का इस तरह यश लीजिए

सय्यद अमीर अली

—:०:—

चिंता

ओ चिंता की पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली;
ज्वाला मुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप की मतवाली!

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा!
हरी- भरी सी दौड धूप, ओ
जल- माया की चल रेखा!

इस ग्रह कक्षा की हल चल! री,
तरल गरल की लघु लहरी;
जरा मरण जीवन की, और न
कुछ सुनने वाली बहरी!

अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी!
अरी आधि, मधुमय अभिशाप!
हृदय -गगन में धूम केतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुंदर पाप!

मनन करावेगी तू कितना?
उस निश्चित जाति का जीव;
अमर करेगा क्या? तू कितनी,
गहरी डाल रही है नींव,

आह! घिरेगी हृदय लहलहे,
खेतों पर करका-घन सी;
छिपी रहेगी अंतर तम में,
सब के तू निगूढ धन सी.

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता
तेरे हैं कितने नाम!
अरी पाप है तू, जा, चल जा
यहां नहीं कछु तेरा काम.

विस्मृति आ, अवसाद घेर ले,
नीरवते! बस चुप कर;
चेतनता चल जा, जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे.

कर्म

कितना दुख जिसे मैं चाहूं
वह कुछ और बना हो,
मेरा मानस चित्र खींचना
सुंदर सा सपना हो.

★ ★ ★ ★

जाग उठी है दारुण ज्वाला
इस अनंत मधुवन में,
कैसे बुझे कौन कह देगा
इस नीरव निर्जन में.

★ ★ ★ ★

अखिल विश्व का विष पीते हो
सृष्टि जियेगी फिर से,
अहो अमर शीतलता इतनी
आती तुम्हें किधर से?

★ ★ ★ ★

इन चरणों में कर्म कुसुम की
अंजलि वे दे सकते,
चले आ रहे छाया पथ में
लोक पथिक जो थकते.

★ ★ ★ ★

सदा पूर्णता पाने को सब
भूल किया करते क्या?
जीवन में यौवन लाने को
जी जी कर मरते क्या?

★ ★ ★ ★

यह विराग सम्बन्ध हृदय का
कैसी यह मानवता!
प्राणी को प्राणी के प्रति बस,
बची रही निर्ममता!

★ ★ ★ ★

जीवन को संतोष अन्य का
रोदन बन हंसता क्यों?
एक एक विश्राम प्रगति को
परिकर सा कसता क्यों?

★ ★ ★ ★

दुर्व्यवहार एक का कैसे
अन्य भूल जावेगा?
कौन उपाय! गरल को कैसे
अमृत बना पावेगा?

★ ★ ★ ★

जिसके हृदय सदा समीप है,
वही दूर जाता है,
और क्रोध होता उस पर ही,
जिससे कुछ नाता है.

★ ★ ★ ★

आकर्षण से भरा विश्व यह,
केवल भोग्य हमारा है,
जीवन के दोनों कूलों में,
बहे वासना धारा.

★ ★ ★ ★

औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख विस्तृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ.

दर्शन

मैं क्या दे सकती हूँ तुम्हें मोल,
यह हृदय! अरे दो मधुर बोल;

मैं हंसती हूं रो लेती हूं,
मैं पाती हूं खो देती हूं,
इससे ले उसको देती हूं,
मैं दुख को सुख कर लेती हूं,

अनुराग भरी हूँ मधुर घोल
चिर विस्मृति सी हूं रही डोल

★ ★ ★ ★

यह प्रभापूर्ण तव मुख निहार
मनु हत चेतन थे एक बार,

नारी माया ममता का बल,
वह भक्ति मयी छाया शीतल,
फिर कौन क्षमा करदे निश्चल,
जिससे यह धन्य बने भूतल,

तुम क्षमा करोगी, यह विचार,
मैं छोड़ूं कैसे साधिकार!

★ ★ ★ ★

अब मैं रह सकता नहीं मौन
अपराधी किन्तु यहां कौन

सुख दुख जीवन में सब सहते,
पर केवल सुख अपना कहते,
अधिकार न सीमा में रहते,
पावस निर्झर से वे बहते;

रोके फिर उनको भला कौन?
सबको वे कहते शत्रु हीन!

★ ★ ★ ★

अग्रसर हो रही यहां फूट,
सीमाएँ कृत्रिम रहीं टूट;

श्रम भाग बन गया जिन्हें'
अपने बल का है गर्व उन्हें,
नियमों की करनी सृष्टि जिन्हें,
विप्लव की करनी वृष्टि उन्हें.

सब पिये मत्त लालसा घूंट,
मेरा साहस अब गया छूट.

—०—

भिक्षुक

दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकडिया टेक,
मुठ्ठीभर दाने को भूख मिटाने को,
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता,
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढ़ाय,

भूख से सूख ओंठ जब जाते,
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते,
घूंट आंसुओं की पीकर रह जाते,
चाट रहे जूठी पत्तल वे, कभी सडक पर खडे हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अडे हुए,
ठहरो, अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूंगा,
अभिमन्यु जैसे हो सको तुम,
तुम्हारे दुख मैं अपने हृदय में खींच लूंगा,

कामना

मेरा प्रतिपल सुन्दर हो,
प्रति दिन सुन्दर सुखकर हो,
यह पल पल का लघु जीवन,
सुन्दर सुख कर शुचितर हो !

हों बूंदें अस्थिर लघुतर,
सा ग र में बूंदें सा ग र,
यह एक बूंद जीवन का,
मोती सा सरस सुधर हो !

मधु ऋतु के कुसुम मनोहर,
कुसुमों की ही मधु प्रियतर,
यह एक मुकुल मानस का,
प्रमुदित मोदित मधुमय हो !

मेरा प्रतिपल निर्भय हो,
निःसंशय मंगलमय हो,
यह नव नव पल का जीवन,
प्रतिपल तन्मय तन्मय हो !

जीवन का अधिकारी

जो है समर्थ जो शक्तिमान,
जीने का है अधिकार उसे,
उसकी लाठी का वैल विश्व,
पूजता सभ्य संसार उसे!

दुर्वल का घातक दैव स्वयं,
समझो बस भू का भार उसे!
'जैसे को तैसा, नियम यही,
होना ही है संहार उसे!

है दास परिस्थितियों का नर,
रहना उस के अनुसार उसे!
जीता है योग्य सदा जग में,
दुर्बल ही है आहार उसे!

तृण, झष, पशु से नर तन देता,
जीवन - विकास का तार उसे!
वह शासन क्यों न करे भूपर.
चुनना है सबका सार उसे!

सब मानव मानव हैं समान

गूंजे जय ध्वनि से आसमान–
सब मानव मानव हैं समान!

निज कौशल, मति, इच्छानुकूल,
सब कर्म निरत हों भेद भूल,
बंधुत्व - भाव ही विश्व भूल,

सब एक राष्ट्र के उपादान!
गूंजे जय ध्वनि से आसमान!

लोकोन्नति का हो खुला द्वार,
पथ दर्शक सबका सदाचार,
हों मुक्त कर्म वाणी विचार,

हों श्रेय – प्रेय रे एक प्राण!
गूंजे जय ध्वनि से आसमान!

हो सहज स्नेह संस्कृत स्वभाव,
उर में उमंग, उत्साह, चाव,
धन अन्न वस्त्र का मुक्त स्राव

हो एक विश्व जीवन महान!
गूंजे जय ध्वनि से आसमान!

सब, श्रम, उद्यम गौरव प्रधान,
सब कर्मों का हो उचित मान,
सब कंठों में हो एक गान,

मानव मानस सब है समान!
गूंजे जय ध्वनि से आसमान!

उद्‌बोधन

दुख में सुख की लहर छिपी है
सुख में और सुखों की आशा.
जीने में जीवन की इच्छा
जीवन जीवन की परिभाषा.

× × × ×

यहां ठहरना कहीं नहीं है
चलते जाओ चलते जाओ.
यह पथ अभी विराम कहां है
चलते जाओ चलते जाओ.

× × × ×

चढो चढो थक गये चढो
फिर जीवन भूधर चढ़ना होगा.
सोकर, जगकर, रोकर, हंसकर.
चढ़ना होगा बढ़ना होगा

× × × ×

पीछे तो केवल स्मृतियां हैं.
बीत चुका पथ 'भूत' मुसाफिर
आगे कुहरा चीर सको तो.
बना बना पथ बढो मुसाफिर.

× × × ×

चलते जाओ, बढ़ते जाओ.
खींच रहा कोई आकर्षण.
जहां गिरे बस वही मरण है
ऊबड़ खाबड़ समतल जीवन.

उदय शंकर भट्ट

बालिका परिचय

यह मेरी गोदी की शोभा, सुख सोहाग की है लाली,
शाही शान भिखारिन की है, मनोकामना मतवाली.
दीपशिखा है अंधेरे की, घनी घटा की उजियाली,
उषा है यह कमल भृंग की, है पतझड़ की हरियाली.
सुधाधार यह नीरस दिल की, मस्ती गगन तपस्वी की,
जीवित ज्योति नष्ट नयनों की, सच्ची लगन मनस्वी की.
बीते हुए बालपन की यह, क्रीड़ा पूर्ण वाटिका है,
वही मचलना वही किलकना, हँसती हुई नाटिका है.
मेरा मंदिर, मेरी मसजिद, करवट काशी यह मेरी,
पूजा पाठ ध्यान जप तप है, घट घट बासी यह मेरी.
कृष्ण-चंद की क्रीडाओं को, अपने आंगन में देखो,
कौसल्या के मातृ मोद को, अपने ही मन में देखो.
प्रभु ईसा की क्षमाशीलता, नबी मुहम्मद का विश्वास,
जोवदया जिन पर गौतम की, आवो देखो इसके पास.
परिचय पूछ रहे हो मुझसे, कैसे परिचय दूं इसका,
वही जान सकता है इसकी, माता का दिल है जिसका.

सुभद्राकुमारी चौहान

—:०:—

ठुकरा दो या प्यार करो

देव! तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते हैं
सेवा में बहु मूल्य भेंट वे, कई रंग के लाते हैं.
धूम धाम से साजबाज से, वे मंदिर में आते हैं,
मुक्ता मणि बहु मूल्य वस्तुएँ, लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं.
मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लाई,
फिर भी साहस कर मंदिर में, पूजा करने को आई.
धूप दीप नैवेद्य नहीं है, झांकी का शृंगार नहीं,
हाय गले में पहिनाने को, फूलों का भी हार नहीं.
स्तुति कैसे करूं कि स्वर में, मेरे है माधुरी नहीं,
मन का भाव प्रगट करने को मुझमें है चातुरी नहीं.
नहीं दान है नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई,
पूजा कीभी विधि न जानती, फिर भी नाथ चली आई.
पूजा और पूजापाठ प्रभुवर, इसी पुजारिन को समझो,
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो.
मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी, हृदय दिखाने आई हूं,
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूं.
चरणों पर अर्पण है इसको, चाहो तो स्वीकार करो,
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो.

—:o:—

क्रांतिकारी

पाया था हमने मानव उर कोमल,

नीड़ों में जैसे पक्षी हैं बस जाते,
उनकी सीमा में अपने शिशु दुलराते,

वैसे ही हम थे अपनी कुटी बसाते,
नंदन -वन सा सुख हम भी उसमें पाते,
वरसाने उसमें स्नेह हृदय का निच्छल,
पाया था हमने भी मानव उर कोमल,

हमने भी आहों का बंधन पहचाना,
आंसू को अपना परिचित हमने जाना,

मुसकानों पर सीखा सर्वस्व लुटाना,
आशा -इंगित पर स्वप्न भवन बनवाना,
सुख में दुख में हम भी थे मानव केवल
पाया था हमने भी मानव उर कोमल,

क्षण में हमारा बदल सका है जीवन,
क्षण में न हुआ हममें इतना परिवर्तन,
हम भी अपना रखते इतिहास सुविस्तृत,
हम भी रखते अपना विकास क्रम आगत,
है एक कहानी इस जीवन का प्रतिपल,
पाया था हमने भी मानव - उर कोमल,

बन गया हृदय ही अपना शत्रु हमारा,
सह न सका वह दुखियों की आंसू की धारा,
नंगों - भूखों को देख तड़पते रोते,
अपने श्रम का फल निरपराध सब खोते,
हो उठो हमारा भावुक अंतर चंचल,
पाया था हमने भी मानव उर कोमल,

युग - युग की पीड़ित मानवता के मनकी,
अवरुद्ध आह संचित सारे जीवन की,
हम में ममत्व का पाकर एक सहारा,
थी फूट पडी बन निश्चय उग्र हमारा,
हम निकल पड़े ले प्रबल प्रेरणा का बल,
पाया था हमने भी मानव - उर कोमल,

कितना दुर्गम, कितना विस्तृत वह पथ था,
'इति' ज्ञान नहीं था, जाना केवल अथ था,
हमने प्राणों पर खेल किया निश्चय था,
इस लिए मरण का हमें न कोई भय था,
स्वातंत्र्य, साम्य के मद में थे हम पागल,
पाया था हमने भी मानव -उर कोमल,

हम एक नये जीवन प्रभात में जागे,
अपने सुख दुख को कुचल बढ़े हम आगे,
अपने यौवन में आग लगाना सीखे
अपनी हस्ती को स्वयं मिटाना सीखे,
था सर्वनाश ही बना पंथ का संबल,
पाया था हमने भी मानव उर कोमल,

कितने कटु अनुभव पद - पद पर होते थे,
कितने साथी जीवन अपना खोते थे,
विश्वासघात कितने करते अपना बन,
कितने करते थे आमिष पर आत्मार्पण,
जीवन में प्रति पल रहती अद्भुत हलचल,
पाया था हम ने भी मानव - उर कोमल,

प्रति पल सम्मुख रहती थी मृत्यु हमारे,
शंकित फिरते हम बन बन मारे मारे,
फिर भी न शिथिल उत्साह कभी था होता,
मन भीषण संकट में भी धैर्य न खोता,
हिमगिरि से सीखा उसने रहना अविचल,
पाया था हम ने भी मानव - उर कोमल,

'मरने वालो,' तुम मरो, तुम्हें है मरना,
हम जीते तो हैं, और हमें क्या करना,
यह उदासीनता देखी उस जन - गण की,
हम मुक्ति चाहते थे जिसके जीवन की,
हम सह यह भी आघात, दिये आगे चल,
पाया था हम ने भी मानव - उर कोमल,

घर की सुध क्या हमको न कभी आती थी ?
क्या भूख, प्यास, निद्रा न सता पाती थी?
था किन्तु गुलामी का कंटक भीषणतर,
था सहना जिसका कठिन किसी कीमत पर,
कष्टों से हमने भरा खुशी से आंचल,
पाया था हमने भी मानव-उर कोमल,

राखी आयी, पर रही कलाई सूनी,
विजया पर व्यथा विफलता की थी दूनी,
दीपावलि आयी, होली का दिन आया,
पर, जीवन मे हमने उल्लास न पाया,
बीते कितने मधुमास, न कूकी कोयल,
पाया था हमने भी मानव-उर कोमल,

थोडे से साथी, सीमित सब साधन थे,
प्रतिकूल परिस्थिति, पद पद पर बंधन थे,
हम महा शक्तियों को चुनौतियाँ देकर,
थे नयी व्यवस्था चाह रहे इस भू पर,
सिर पर विपदा के छाये कितने बादल,
पाया था हमने भी मानव-उर कोमल,

फिर भी, उसका कुछ किया प्रदर्शन हमने,
जिस तीव्र व्यथा का पाया दर्शन हमने,
जिसमें मानवता घुट-घुट कर मरती थी,
जिसको शोषण में मूक सहन करती थी,
संदेश सुनाया बहरे जग को अविरल,
पाया था हमने भी मानव-उर कोमल,

पर, इतने श्रम के बाद बात यह जानी,
था विफल यत्न वह भ्रांत व्यर्थ कुरबानी,
फिर नये सिरे से नये मार्ग पर चलना,
जीवन प्रदीप को है तिल–तिल कर जलना,
पथ बदल गया, पर लक्ष्य वही है उज्वल,
पाया था हमने भी मानव–उर कोमल,

गुम - राह कहें चाहे फिर हम को ज्ञानी,
ठुकरावें हम को आत्म–तत्व अभिमानी,
सर आखों पर है उन सबकी मनमानी,
कहते हम इतना नयनों में भर पानी,
रखते हैं हम भी एक हृदय लघु निर्मल,
पाया था हम ने भी मानव–उर कोमल.

(जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द)

—:०:—